विषय सूची

पत्र 1 अनुभाग 1 **1**

1. आयुर्वेद निरुपण **3**

1.1 आयुर्वेद शब्द की निरुक्ति एवं व्युत्पत्ति 3
1.2 सिद्धान्त के लक्षण एवं प्रकार 6
1.3 सिद्धान्त लक्षण 6
1.4 आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों का परिचय एवं महत्व 7

2. आयुर्वेद दर्शन निरुपण **31**

2.1 आयुर्वेदीय मूलभूत सिद्धान्तों की दार्शनिक पृष्ठभूमि 31
2.2 दर्शन शब्द का अर्थ एवं निरुक्ति 31
2.3 दर्शनों की संख्या एवं श्रेणी विभाजन (प्रकार) 36
2.4 पदार्थ लक्षण 55

3. द्रव्य विज्ञानीयम् **64**

3.1 द्रव्य के लक्षण 64
3.2 महाभूत प्रकरण 77
3.3 काल निरूपण 126
3.4 दिक् (दिशा) निरूपण 136
3.5 आत्म-तत्त्व-निरूपण 140
3.6 पुरुष वर्णन 156
3.7 मनो निरूपण 160
3.8 पंचमहाभूत एवं त्रिगुण की मानस एवं देह प्रकृति निर्माण में कारणता 172
3.9 तमो (अन्धकार) निरूपण 172

पत्र 1 अनुभाग 2 **175**

4. गुण विज्ञानीयम् **177**

4.1 परिभाषा 177
4.2 चरकोक्त 41 गुणों का न्यायोक्त 24 गुणों में समन्वय- 189
4.3 गुणों का आयुर्वेद में चिकित्सकीय प्रयोग 205

5. कर्म विज्ञानीयम् **207**

5.1 कर्म की परिभाषा 207
5.2 कर्म की निरुक्ति 209
5.3 कर्म का आयुर्वेद में उपयोग 214

6. सामान्य विज्ञानीयम् **216**

6.1 सामान्य निरूपण 216
6.2 ''सामान्य का आयुर्वेदीय पक्ष''-(गुण कर्मानुसार प्रयोग) 221

7. विशेष विज्ञानीयम् **224**

7.1 विशेष निरूपण 224
7.2 आयुर्वेदीय दृष्टि से विशेष का उपयोग (द्रव्य, गुण, कर्मानुसार) 228
7.3 आयुर्वेद में सामान्य एवं विशेष विवेक-(प्रवृत्तिरुभयस्य तु) 229

8. समवाय विज्ञानीयम् **231**

8.1 समवाय लक्षण 231
8.2 समवाय का चिकित्सकीय प्रयोग 235

9. अभाव विज्ञानीयम् **236**

9.1 अभाव स्वरूप 236
9.2 अन्योन्याभाव और अनन्योन्याभाव 239

पत्र 2 अनुभाग 3 **243**

10. प्रमाण-परीक्षा विज्ञानीयम् **245**

10.1 प्रमा एवं प्रमाण निरूपणम् 245
10.2 प्रमा विवेक 246
10.5 प्रमेय विशेष विचार 265

11. आप्तोपदेश प्रमाण निरूपण **269**

11.1 आप्तोपदेश 269
11.2 शब्द प्रमाण निरूपण 273
11.3 वाक्यार्थ ज्ञान 276
11.4 वाक्य लक्षण 277
11.5 वाक्यार्थ ज्ञान के हेतु 278

11.6 शब्द एवं वाक्यार्थबोधक वृत्तियां 280
11.7 शक्तिग्रहयोग 282
11.8 आगम एवं शास्त्र प्रमाण 283
11.9 तुलायन्त्रादि प्रमाण 284
11.10 ऐतिह्य (इतिहास) प्रमाण 285
11.11 निघण्टु 287

12. प्रत्यक्ष प्रमाण निरूपण 289

12.1 प्रत्यक्ष परक परिचयात्मक विचार 289
12.2 आयुर्वेदीय प्रत्यक्ष लक्षण विवेक 292
12.3 ज्ञानोत्पत्ति प्रकार 300
12.4 छः प्रकार के सन्निकर्ष 301
12.5 इन्द्रिय विवरण 303
12.6 त्रयोदश करण वर्णन 313
12.7 वेदनाओं का अधिष्ठान, कारण और निवृत्ति 317

13. अनुमान प्रमाण निरूपणम् 324

13.1 अनुमान परीक्षा (प्रमाण) 324
13.2 अनुमिति करण पर विचार 324
13.3 पञ्चावयव का वर्णन 328
13.4 अनुमान पदार्थ लिङ्ग परामर्श आदि 331
13.5 परामर्श 333
13.6 लिंग परामर्श 333
13.7 व्याप्ति विवेक 333
13.8 व्याप्ति लक्षण 334
13.9 पक्ष विवेक 336
13.10 हेतु का स्वरूप एवं भेद 338
13.11 हेत्वाभास 340
13.12 तर्क विवेचन 342
13.13 दृष्टांत 344

14. युक्ति प्रमाण निरूपण 349

14.1 युक्ति (परीक्षा) प्रमाण 349
14.2 युक्ति प्रमाणत्वेन विचार 350
14.3 युक्ति प्रमाणत्व में शंका एवं प्रमाणत्व मान्यता 352

15. उपमान प्रमाण निरूपण 354

15.1 परिभाषा 354
15.2 अन्य प्रमाणों का निरूपण 358

16. कार्यकारणभाव सिद्धान्त एवं विविध वाद प्रकरण **360**

16.1 कार्य कारण विवेक 360
16.2 आयुर्वेद में कार्य कारण विचार 365
16.3 विविधवाद का वर्णन 369
16.4 सृष्टि या विकासवाद 383

पत्र 2 अनुभाग 4 **387**

17. आयुर्वेद का इतिहास **389**

17.1 आयुर्वेद इतिहास की प्राचीनता 392
17.2 ऐतिहासिक काल के पूर्व का इतिहास 392
17.3 आयुर्वेद की नित्यता, शाश्वतता और अनादित्व 393
17.4 सैद्धान्तिक प्रमाणों द्वारा सिद्धि 394
17.5 आयुर्वेद ग्रन्थों द्वारा सिद्धि 394
17.6 पंचम स्वतन्त्र वेदोक्त प्रमाण द्वारा सिद्धि 394
17.7 आयुर्वेदीय ऐतिहासिक ज्ञान की आवश्यकता 395
17.8 इतिहास ज्ञान की उपयोगिता एवं महत्व 396
17.9 वैदिक काल में आयुर्वेद की स्थिति 396
17.10 ऐतिहासिक व्यक्तित्व, विषय, काल, घटना एवं आयुर्वेद पर इनका प्रभाव 399
17.11 लौकिक-परम्परा में आयुर्वेदावतरण 402
17.12 धन्वन्तरि दिवोदास 406

18. संहिताओं के प्रणेता आचार्यगण, इनकी रचनाएं एवं योगदान **409**

18.1 प्रमुख संहिताओं का परिचय एवं योगदान 410
18.2 आयुर्वेद की प्रमुख संहिताओं के प्रणेता आचार्य 415
18.3 संहिताओं के प्रमुख प्रतिसंस्कर्त्ता आचार्यगण 425

19. आयुर्वेद ग्रन्थों के प्रमुख टीकाकार **433**

19.1 सुश्रुत के व्याख्याकार 436
19.2 अष्टांग हृदय के व्याख्याकार 436
19.3 कालानुसार प्रमुख व्याख्याकारों का परिचय 438
19.4 आयुर्वेद के प्राचीन संहिता एवं संग्रह ग्रन्थों के प्रमुख व्याख्याकार 439
19.5 सुश्रुत एवं चरक के हिन्दी टीकाकार 440

20. ग्रन्थों को संग्रहित करने वाले निम्नलिखित आचार्यगण **446**

21. आधुनिक काल के लेखकों का परिचय **450**

21.1 आधुनिक काल के ग्रन्थ लेखक 453

22. आयुर्वेद की सार्वभौमिकता **455**

22.1 प्राचीन मिश्र में भैषज्य विज्ञान 455

23. स्वतन्त्रता के पूर्व एवं पश्चात् आयुर्वेद विकास सम्बन्धी गतिविधियाँ **465**

23.1 आयुर्वेदीय शिक्षण परम्परा का विकास 466
23.2 विकास हेतु विभिन्न समितियों का गठन एवं सुझाव 469
23.3 आयुर्वेद के विभिन्न संस्थानों का परिचय एवं कार्य-कलाप 472

24. आयुर्वेद के राष्ट्रीय संस्थानों का परिचय **478**

24.1 आयुर्वेदीय औषधि एवं प्रसाधन अधिनियम (ड्रग्स एण्ड कॉस्मेटिक एक्ट)

25. आयुर्वेद की राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाएँ **484**

26. आयुर्वेद उत्कर्ष में विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) की गतिविधियों का परिचय **488**

अनुबंध

अनुबंध 1. प्रवाह चित्र *491*
अनुबंध 2. प्रश्नोत्तरी *500*

अध्याय 3

द्रव्य विज्ञानीयम्

दार्शनिक दृष्टि से पदार्थ गणना में द्रव्य प्रथम पदार्थ माना गया है। अन्य सभी पदार्थों की स्थिति इसी पर आधारित है, अर्थात् द्रव्य न होगा तो अन्य पदार्थों का अस्तित्व ही नही होगा। अतः दार्शनिकों ने इसी की प्रथम गणना करना उचित समझा।

द्रव्य की निरुक्ति

यह द्रव्य शब्द **''द्रु गतौ''** धातु में यत् प्रत्यय करने से बनता है जिसका अर्थ होता है **''द्रवति गच्छति परिणाममभिक्षणमिति द्रव्यम्''**। व्याकरण की दृष्टि से गति के तीन अर्थ लिये जाते हैं- ज्ञान, गमन एवं प्राप्ति रूप। अतः जिससे परिमाण का ज्ञान हो, जो निरन्तर, गतिशील हो तथा परिणाम को प्राप्त हो उसे द्रव्य कहते हैं। नैयायिकों के अनुसार **''द्रवति गच्छति संयोगमिति द्रव्यम्''** निरुक्ति बताई गई है।

3.1 द्रव्य के लक्षण

१. **यत्राश्रिताः कर्मगुणाः कारणं समवायि यत् तद् द्रव्यम्** (चरक सूत्र)
२. **क्रियागुणवत् समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम्** (वैशेषिक)
३. **द्रव्यलक्षणं तु-क्रियागुणवत् समवायिकारणम्** (सु०सू०)
४. **रसादीनां पञ्चानां भूतानां यदाश्रयभूतं तद्द्रव्यम्** (भावप्रकाश, नागार्जुन)
५. **तत्र समवायि कारणं द्रव्यम् गुणाश्रयो वा** (तर्कभाषा)
६. **गुणाश्रयः कर्माश्रयश्च द्रव्यम्** (कणादगौतमीयम्)
७. **गुणत्वं द्रव्यत्वं जातिमत्त्वं वा द्रव्यसामान्यलक्षणम्** (नैयायिक)
८. **द्रव्यत्वं जातिमत्त्वं द्रव्यत्वम्** (निर्दुष्ट लक्षण)

1. जिसमें कर्म एवं गुण आश्रित रहें एवं जो अपने कार्य द्रव्यों के प्रति समवायि कारण हो, उसे द्रव्य कहते हैं।
2. कार्य का समवायि कारण और गुण तथा कर्म का जो आश्रयभूत पदार्थ है उसे वैशेषिकमतानुसार द्रव्य कहते हैं।
3. जिसमें क्रिया एवं गुण दोनों हों तथा किसी न किसी रूप में दोनों का समवायि कारण रूप सम्बन्ध हो उसे द्रव्य कहते हैं।
4. रस, गुण, वीर्य विपाक तथा कर्म इन पांचों के आश्रयभूत पदार्थ को द्रव्य कहते हैं।
5. जो किसी कार्य का समवायि कारण हो एवं गुण का आश्रय हो उसे द्रव्य कहते हैं।
6. गुणाश्रय और कर्माश्रय होना ही द्रव्य का सामान्य लक्षण है।
7. नैयायिकों के अनुसार जो अपने सम्पूर्ण जातिगत लक्षणों को प्रकट करता हो।
8. निर्दुष्ट लक्षण रूप में जिस लक्षण से द्रव्य की सम्पूर्ण जाति का ज्ञान हो एवं जाति के सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त हो तो उसे द्रव्य कहते हैं।

JAYPEE BROTHERS

विशेष ज्ञातव्य

द्रव्य के लिए किये गए उपरोक्त लक्षणों से यही ज्ञात होता है कि कर्म व गुण के आश्रयभूत तथा अपने कार्य द्रव्यों के प्रति समवायि कारण पदार्थ को द्रव्य का प्रधान लक्षण बताया है। तर्कसंग्रह हिन्दी टीका में द्रव्य लक्षण विवेचन करते हुए चार प्रकार के व्यक्त किया है। 1. द्रव्यत्वजातिमत्त्वम्, 2. गुणवत्त्वम्, 3. क्रियावत्त्वम्, 4. समवायि कारणत्वम्।

उपरोक्त चारों में अन्तिम को छोड़कर सभी दोषयुक्त हैं। प्रथम लक्षण में मात्र द्रव्य की शाब्दिक परिभाषा है। इससे द्रव्य का रूप स्पष्ट नहीं होता। सिद्धान्त चन्द्रोदय में द्रव्यत्व जाति की सत्ता सिद्ध की है। इसके लिए लिखा है–

''द्रव्यवृत्तिर्यासमवायि कारणता सा किञ्चिद्धर्मावछिन्ना कारणता दण्डवृत्ति कारणतावत्'' अर्थात् प्रत्येक कारणता में कोई न कोई धर्मावच्छिन्नता अवश्य रहती है जैसे दण्डनिष्ठ कारणता में दण्डत्वावच्छिन्नता का रहना।

इसी प्रकार द्रव्य में रहने वाली जो समवायिकारणता है वह भी किसी न किसी धर्म से अवश्य अवछिन्न है, परन्तु इसके अनुसार दो मान्यताएं सामने आती हैं इनमें से एक तो यह कि द्रव्य एक कारण है, दूसरी यह कि कारण का कोई न कोई धर्म अवश्य होना चाहिए। अत: धर्मावच्छिन्नता प्रधान है।

दूसरी परिभाषा गुणवत्त्वम् है। यह अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है किन्तु इसमें एक दोष यह है कि जिस क्षण गुण उत्पन्न होता है उस समय वह निर्गुण होने के कारण उसे द्रव्य कहा जा सकेगा। इस विषय में नैयायिकों का विचार है कि उत्पन्न होते समय द्रव्य निर्गुण होता है। **''आद्ये क्षणे निर्गुणं द्रव्यं तिष्ठति''** इससे अतिव्याप्ति दोष का निवारण करने के लिए यह कहा जाता है कि–**''गुणसमानाधिकरणसत्ताभिन्ने जातिमत्त्वम्''** अर्थात् प्रथम क्षण में द्रव्य गुणरहित होते हैं किन्तु उनमें द्रव्यत्व जाति अवश्य रहती हैं क्योंकि सत्ता भी एक जाति है जिसमें गुण रहते हैं अत: इससे अतिव्याप्ति दोष का निवारण करने के लिए **''सत्ताभिन्ने''** पद का उपयोग किया है।

तीसरी परिभाषा क्रियावत्त्व है जिसमें द्रव्य को कर्म का आश्रय बताया गया है। यहां अकेला कर्म भी गुण के बिना द्रव्य नहीं हो सकता व कर्म से लक्षण दोषरहित नहीं हो सकता अत: यह भी दोषपूर्ण है।

चतुर्थ लक्षण **''समवायिकारणत्व''** है जो शुद्ध होते हुए भी पारिभाषिक रूप में भी लक्षित होता है। इस चतुर्थ संकेत का लक्षण करने हेतु ही उपरोक्त तीनों लक्षणों का उल्लेख किया गया है, क्योंकि द्रव्य जाति की सिद्धि समवायि कारण के अवच्छेदक रूप में करने से होती है और सम्पूर्ण द्रव्यों में गुणात्मक कार्य की दृष्टि से सम्भावित है। अत: द्रव्य को समवायिकारण और गुणाश्रय कहने से उसमें संयोग आदि गुणों की समवायिकारणता का और उसके अवच्छेद रूप में द्रव्यत्व जाति का ध्यान स्वत: आ जाता हैं अत: **कर्म एवं गुण का आश्रय होना तथा अपने द्रव्यगत कार्यों के प्रति समवायिकारण होना ही द्रव्य का लक्षण है।**

यद्यपि यह लक्षण सभी कारण कार्य द्रव्यों में सम्पूर्ण रूप से प्रकट नहीं होता है जैसा कि इसकी टीका में श्री चक्रपाणि ने लिखा है कि–यद्यपि कर्म, आकाश, दिशा, काल आत्मादि में समवायि नहीं है क्योंकि वे कर्म आश्रय नहीं है। फिर भी उनकी टीका से आचार्यों के कथन को सर्वथा उचित मानते हुए इसे **स्वजातीय व्यापक** एवं **विजातीय व्यावर्तक** धर्म रूप में समझा जाना उचित बताया है। अर्थात् कर्म इन नौ कारण द्रव्यों में से किसी में स्वजाति व्यापक रूप में विद्यमान है किन्तु आकाशादि में विजातीय व्यावर्तक रूप में है। सामान्य अर्थ में इसे इस प्रकार समझया जाता है कि आकाशादि कर्म की अपेक्षा नहीं रखते। यदि इनके साथ इनमें कोई कार्य होता है तो इनको कोई आपत्ति भी नहीं एवं कार्य नहीं होता है तो उसकी आवश्यकता नहीं समझते जैसे हाथों को मिलाकर ताली बजाने का कार्य आकाश में होता है। इस ताली बजने रूप कार्य के होने में यद्यपि आकाश की आवश्यकता हुई है किन्तु यह ताली बजाना आकाश नहीं चाहता था। व्यक्ति की इच्छा थी यदि आकाश न होता तो शायद हाथों का वेग के साथ मिलन भी नहीं होता। यह सम्पूर्ण व्याप्ति (दोनों पक्षों में) न होकर एक पक्ष में हैं अत: कर्म हुआ तो एक पक्षवाला। इससे सिद्ध होता है कि कर्म की इन आकाशादि में भी क्रिया तो होती है किन्तु इससे आकाशादि की अभिव्यक्ति न होकर अन्य पर निर्भर करते हुए भी आकाशादि के सहयोग से ताली आदि के बजने

JAYPEE BROTHERS

से उनमें ही कर्म को जाना जावेगा। अत: द्रव्य का दिया गया लक्षण निर्दुष्ट लक्षण यही है कि जो कर्म एवं गुण का आश्रय हो तथा अपने कार्य द्रव्यों के प्रति समवायि कारण हो वही द्रव्य है।

द्रव्य लक्षण विवेक

विभिन्न विद्वानों ने ऊपर जो द्रव्य का लक्षण बताया है उसमें समवाय सम्बन्ध, द्रव्य और गुण का आश्रयत्व एवं द्रव्यत्व जाति का विशेष उल्लेख आया है। इनमें गुण, कर्म एवं द्रवयत्व जाति द्रव्य में नित्य एवं स्थायी रूप में रहने वाले भाव है। यह स्थायित्व समवाय सम्बन्ध के कारण होता है। अत: इनको समझने हेतु निर्दुष्ट लक्षण तथा समवाय सम्बन्ध एवं आश्रय भाव को जानना भी आवश्यक हो जाता है।

द्रव्य का निर्दुष्ट लक्षण

जिस द्रव्य का लक्षण किया जाये वह लक्षण उस द्रव्य की सम्पूर्ण जाति में लक्षण दोषों से रहित, पूर्ण-रूपेण घट जाये उसे उस द्रव्य का निर्दुष्ट लक्षण कहते हैं। अत: गाय का निर्दुष्ट लक्षण बताते समय हमें अन्य लक्षणों के साथ **'सास्नादिमत्वं गोत्वं'** कहना होगा अर्थात् अनेक रंगों वाली, सींग, पूंछ, चिरे खुर वाली तथा **गलकम्बल सहित** पशु को गाय कहते हैं। यहां अन्य पशुओं में अन्य लक्षण तो मिलेंगे किन्तु गलकम्बल नहीं होने से दोष नहीं होगा। एक पक्षीविशेष में सास्ना तो होती है किन्तु श्रृङ्ग पूंछ नहीं होने से यह अतिव्याप्ति दोषरहित होगा तथा दूसरे रूप में गाय का वह लक्षण जो उसकी सम्पूर्ण जाति में घटता है निर्दुष्ट लक्षण कहलाता है। **'गोत्वजातिमत्त्वं गोत्वम्'।**

इसी प्रकार द्रव्य के अनेक लक्षण बताये गए हैं। इन लक्षणों को अनेक मतों द्वारा अपने-अपने अनुभव के आधार पर व्यक्त किया गया है। ''क्या द्रव्य का लक्षण बताते समय सभी प्रकार के लक्षण बताये जाने आवश्यक है?'' इसके उत्तर में द्रव्य के लिए भी एक निर्दुष्ट लक्षण बताना चाहिए। **द्रव्यत्वजातिमत्त्वम् द्रव्यत्वम्** अर्थात् किया गया लक्षण द्रव्य की सम्पूर्ण जाति में घटता हो वह निर्दुष्ट लक्षण कहलाता है।

दीपिका में लक्षण को असाधारण धर्मयुक्त होना बताया है।

लक्ष्यतावच्छेदकमनियतत्वमसाधारणत्वम्।

अर्थात् **''यदव्याप्त्यतिव्याप्त्यसंभवरूपदोषत्रयशून्यं तदेव लक्षणम्''** जो तीनों दोषों अव्याप्ति, अतिव्याप्ति एवं असंभव से रहित हो वह निर्दुष्ट लक्षण कहा जाता है।

द्रव्य के लक्षण में क्रियावान, गुणवान् तथा कार्य द्रव्य के प्रति समवायि कारण होना, ये तीन धर्म बताये गए हैं। इन तीनों धर्मों में से किसी एक को हटा लेने पर उसमें दोष आ जायेगा। जैसे **'क्रियावत्त्वम् द्रव्यत्वम्''** अर्थात् जो क्रिया वाला हो वह द्रव्य है। ऐसा लक्षण करने पर आकाशादि द्रव्यों में अतिव्याप्ति हो जावेगी क्योंकि व्यापक होने से आकाश में क्रिया नहीं हो सकती। इसलिए दोष को दूर करने के लिए **'गुणवत्त्वम् द्रव्यत्वम्'** अर्थात् जो गुणवाला हो उसे द्रव्य कहते हैं। इस लक्षण द्वारा शब्द आकाश का गुण होने से आकाश में तो अव्याप्ति, दोष दूर हो जायेगा किन्तु अन्य द्रव्यों में यह दोष ज्यों का त्यों बना रहेगा। क्योंकि **'जायमानं द्रव्यम् क्षणमगुणम् तिष्ठति'** अर्थात् जो द्रव्य उत्पन्न होता है वह क्षणभर के लिए गुणरहित होता है जैसा कि पूर्व में बताया है। अत: **'समवायिकारणत्व् द्रव्यत्वम्'** लक्षण करना चाहिए। अर्थात् जो अपने कार्य द्रव्यों का समवायि कारण होता है उसे द्रव्य कहते हैं। इस लक्षण से पूर्व वाले लक्षण का अव्याप्ति दोष तो दूर हो जायेगा क्योंकि सभी द्रव्य अपने गुणों के प्रति समवायि कारण होते हैं परन्तु इस तीसरे लक्षण से भी ईश्वर और आत्मा में अव्याप्ति ज्यों की त्यों बनी रहेगी क्योंकि ईश्वर और आत्मा किसी कार्य का निमित्त कारण होते हुए भी समवायि कारण नहीं होते। अत: द्रव्य का लक्षण करते समय **'द्रव्यत्वजातिमत्त्वम् द्रव्यत्वम्'** ही कहना श्रेष्ठ होगा। अर्थात् द्रव्य वह है जिसमें पाये जाने वाले लक्षण सम्पूर्ण द्रव्य जाति को लक्षित करते हों।

समवाय सम्बन्ध

विश्व की विभिन्न वस्तुओं का अन्य वस्तुओं के साथ पाया जाने वाला सम्बन्ध विशेष रूप से दो प्रकार का होता है- 1. नित्य सम्बन्ध, 2. अनित्य सम्बन्ध।

JAYPEE BROTHERS

अनित्य सम्बन्ध- इसी का दूसरा नाम, संयोग भी है जो क्षणिक होता है। इसमें किसी प्रकार का स्थायित्व नहीं होता। यह क्षणिक एवं काल की अपेक्षा रखता है, अतः अस्थायी है। यह द्रव्य के साथ कभी रहता है एवं कभी नहीं भी रहता। अतः उसे संयोग कहा जाता है। इसके साथ इसका एक प्रतियोगी भी होता है जिसे वियोग कहते हैं। अतः इस सम्बन्ध में कभी संयोग होता है और कभी वियोग होता है। किसी कार्य की उत्पत्ति में सहायक साधन और कारण आदि का उस वस्तु की उत्पत्ति तक सम्बन्ध रहता है। उत्पन्न होने के बाद नहीं। जैसे घड़ा और कुम्भकार, पट और जुलाहा अथवा अन्य बनाने वाले साधन जो कार्य समाप्ति पर वस्तु (घड़े एवं कपड़े) में नहीं दिखाई देते।

नित्य सम्बन्ध- अनित्य के विपरीत जो सम्बन्ध द्रव्य के साथ स्थायी, नित्य और वियोग रहित होता है वह समवाय सम्बन्ध कहलाता है। अतः नित्य सम्बन्ध को समवाय कहते हैं। द्रव्य के साथ गुण और कर्म की नित्यता बताई गई है। इससे यह सिद्ध होता है कि जो गुण और कर्म जिस द्रव्य में होंगे वे द्रव्य की स्थिति तक उसके साथ रहेंगे। द्रव्य से पृथक् होने पर उनकी कोई स्थिति नहीं होती। अतः जहां-जहां द्रव्य होगा वहां-वहां उसमें पाये जाने वाले गुण कर्म होंगे।

समवायिकारणता

एक भाव और प्रकट होता है कि द्रव्य अपने गुण और कर्मों के प्रति समवायिकारण होता है क्योंकि जिस द्रव्य का जिसके साथ नित्य सम्बन्ध होता है वही समवायि कारण कहलाता है, जैसे मिट्टी घट के प्रति समवायि कारण है, दन्ति रेचन कर्म के प्रति समवायि कारण है, जल अपने शीतल स्पर्श गुण के प्रति समवायि कारण है।

आधाराधेय भाव

आयुर्वेद में उपरोक्त भाव को आधाराधेय भाव से स्पष्ट किया है। अतः द्रव्य आधार तथा गुण एवं कर्म का आधेय है। इस आधाराधेय भाव होने से भी समवायिकारण है क्योंकि इस प्रकार देखने में नहीं आता कि कुछ क्षणों के लिए द्रव्य को छोड़कर गुण और कर्म किसी अन्य वस्तु में चले जायें और वह भी नहीं होता कि द्रव्य, गुण और कर्म का आश्रय छोड़कर किसी अन्य को आश्रय देवें, यदि ऐसा होता तो संयोग सम्बन्ध हो जाता, जैसे किसी बर्तन में अभी दूध रखा था और थोड़ी देर बाद दूध निकालकर पानी भर दिया। यहां बर्तन के साथ दूध और पानी का संयोग सम्बन्ध है नित्य सम्बन्ध नहीं। इसी प्रकार कर्म और गुण द्रव्य के साथ आधाराधेय भाव से रहते हैं इसे ही अविना भाव (जहां कोई धर्म एक के बिना नहीं रह सके) सम्बन्ध भी कहते हैं अतः द्रव्य आधार है और गुण, कर्म आधेय है। इसी को व्यक्त करने के लिए चरक ने **''यत्राश्रिता''** शब्द लिखा है। **यत्राश्रिताः कर्मगुणाः कारणं समवायि यत्। तद् द्रव्यम्.....**

जातीयता का भाव

सार्वभौम और सभी के जानने योग्य लक्षण वह होता है जो अपनी सम्पूर्ण जाति का बोध कराता हो। इसी भाव को व्यक्त करने के लिए नैयायिकों ने **''द्रव्यत्वजातिमत्त्वं द्रव्यत्वम्''** लक्षण किया है। इसका यह भाव है कि द्रव्य उसे कहते हैं जो अपनी सम्पूर्ण जाति में घटित होने वले अर्थों से युक्त हो। जैसे गोत्व शब्द से सम्पूर्ण गाय जाति का ज्ञान होता है। चाहे वे लाल, काली, सफेद कोई भी हो। उसी प्रकार द्रव्यत्व जाति के सभी गुण प्रकट करने वाले को द्रव्य कहा जाता है।

निष्कर्ष - उपरोक्त व्याख्याओं से यह स्पष्ट होता है कि जो गुण एवं कर्म का आश्रय वाला, कार्य द्रव्य के प्रति समवायि कारण वाला, रसादि पांचों शक्तियों को आश्रय देने वाला एवं द्रव्यत्व जाति वाला हो उसे द्रव्य कहते हैं। इन सभी के साथ द्रव्य निर्दुष्ट लक्षण वाला प्रकट होता है।

JAYPEE BROTHERS

द्रव्य की परिभाषा

कार्य द्रव्य की परिभाषा करते हुए वाचस्पत्यवृहदभिधान में लिखा है कि-

रसो गुणास्तथा वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च।
पञ्चानां यः समाहारस्तद् द्रव्यमिति कथ्यते॥

अर्थात् रस, गुण, वीर्य, विपाक और शक्ति (वीर्य एवं प्रभाव) इन पांचों का समुदाय द्रव्य कहलाता है।

द्रव्य का वर्गीकरण

द्रव्यों का विस्तार से अवलोकन करने पर ज्ञान होता है कि सम्पूर्ण सृष्टि द्रव्यों पर आधारित है। इनमें निर्माण करने वाले एवं गति देने वाले दोनों प्रकार के द्रव्य है। इसी दृष्टिकोण से द्रव्य का दो भागों में विभाजन किया है।

द्रव्यों का विभाजन

1. कारण द्रव्य, 2. कार्य द्रव्य।

कारण द्रव्य

1. **खादीन्यात्मा मनः कालो दिशश्च द्रव्यसंग्रहः।** सू० 1/48 (चरक)
   खादि अर्थात् आकाशादि पांच महाभूत, आत्मा, मन, काल एवं दिशा ये नौ कारण द्रव्य होते हैं।
2. **तत्र द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवैव।** (तर्क संग्रह)
3. **क्षित्यप्तेजोमरुद्व्योमकालदिग्देहिनो मनः द्रव्याणि।** (कारिकावली)
   अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, देही (आत्मा) एवं मन ये नौ कारण द्रव्य है। वैशेषिक दर्शन में भी यही नौ द्रव्य बताये हैं। यथा-
4. **पृथिव्यप्तेजोवायुराकाशकालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि।** (वैशेषिक)
   उपरोक्त लक्षणों के आधार पर नौ कारण द्रव्य बताये हैं जिनका विवरण आगे दिया जा रहा है।

कारण द्रव्यों की संख्या

वैशेषिकमतानुसार पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, आत्मा, मन, काल तथा दिशा इन नौ द्रव्यों को सृष्टि के निर्माण में सहायक होने से कारण द्रव्य कहा जाता है। इन पृथ्वी आदि नौ द्रव्यों में चेतन सृष्टि के उत्पादक आत्मा और मन हैं तथा शेष सात अचेतन सृष्टि को बनाने वाले हैं।

कार्य द्रव्य- द्रव्य गुण शास्त्र की दृष्टि से द्रव्य शब्द का अर्थ आहार और औषध के रूप में उपयोग में आने वाले सभी सजीव, निर्जीव पांचभौतिक कार्यद्रव्यों से लिया गया है। अवस्थाभेद से इन कार्य द्रव्यों को दो भागों में विभक्त किया गया है- 1. चेतन, 2. अचेतन। चेतन के भी पुनः दो भाग किये गए हैं-

क) बहिरन्तश्चेतन, ख) अन्तश्चेतन। इनमें बहिरन्तश्चेतन में मनुष्य, पशु, पक्षी आदि आते हैं जिन्हें चार भेदों जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज में विभाजित किया गया है। अन्तश्चेतन में वृक्ष, लता, गुल्म आदि आते हैं। इनके भी चार भेद वनस्पति, वानस्पत्य, वीरुध तथा औषध आदि किये गए हैं। अचेतन में धातुओं की भी गणना की जाती हैं इन्हें पार्थिव भी कहा जाता है। इनको प्राकृतिक और कृत्रिम नाम से दो भागों में किया गया है।
इस कार्य द्रव्यों की संख्या अधिकता के कारण स्वतन्त्र रूप से प्रत्येक का अध्ययन करना कठिन होने से ही इनका वर्गीकरण करना उचित समझा गया है।

JAYPEE BROTHERS

कार्यद्रव्यों की वर्गीकरण पद्धति

इस चराचर विश्व में असंख्य द्रव्य हैं। उन सभी का पृथक्-पृथक् अध्ययन करना असम्भव तो नहीं कठिन अवश्य है। अतः विद्वानों ने वर्गीकरण के आधार पर ही अध्ययन किया जाना सम्भव किया है। दर्शन और आयुर्वेद ग्रन्थों में उनके वर्गीकरण की एक विशेष पद्धति है जिसके आधार पर ही उनके गुण, कर्मों का विवेचन किया जा सकता है, इस वर्गीकरण को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है:-

1. कार्य कारण भेद से-(नित्यानित्य भेद से), 2. प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष भेद से, 3. इन्द्रियग्राह्याग्राह्य भेद से, 4. मूर्त एवं अमूर्त भेद से, 5. व्यापकाव्यापक भेद से (परमाणु व सावयवरूपा), 6. चेतनाचेतन भेद से।

१. कार्य कारण भेद से

विश्व सृष्टि में द्रव्यों के दो भेद मुख्य रूप से देखने में आते हैं। एक वे द्रव्य जो कार्य सृष्टि की उत्पत्ति करते हैं एवं दूसरे वे जो उत्पन्न होते हैं। अतः वे जो कार्य सृष्टि की उत्पत्ति करते हैं, परमाणु रूप से नित्य होते हैं उन्हें कारण द्रव्य कहा जाता है तथा दूसरे वे जो नौ कारण द्रव्यों द्वारा उत्पन्न होते हैं एवं अनित्य होते हैं वे कार्य द्रव्य कहलाते हैं, जैसे गेहूं, चावल, घड़ा, कपड़ा आदि संख्या की दृष्टि से कारण द्रव्य नौ तथा कार्य द्रव्य असंख्य होते हैं।

२. प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष भेद से

समस्त द्रव्यों को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष भेद से दो भागों में विभाजित किया जाता है जो द्रव्य स्थूल रूप में परिलक्षित होते हैं वे प्रत्यक्ष हैं तथा जो परमाणु रूप में रहते हैं वे अप्रत्यक्ष कहे जाते हैं।

३. इन्द्रियग्राह्याग्राह्य भेद से-

जो द्रव्य इन्द्रियों से ग्रहण किये जाने योग्य होते हैं, वे इन्द्रियग्राह्य एवं जिनका इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं होता उन्हें अतीन्द्रिय कहा जाता है। जैसे मन, आत्मा, काल, दिशा। इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किये जाने वाले द्रव्यों का ज्ञानेन्द्रियों से ज्ञान प्राप्त होता है। अतः कुछ का घ्राणेन्द्रिय द्वारा, कुछ का रसनेन्द्रिय द्वारा कुछ का चक्षुरिन्द्रिय द्वारा, कुछ का त्वगेन्द्रिय द्वारा तथा कुछ का श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा ग्रहण होता है। अतः प्रत्येक द्रव्य भिन्न-भिन्न इन्द्रियों के ग्राह्य विषय होते हैं। इनका यह ग्रहण प्रकार अपने-अपने विषय के अनुसार होता है। पांचभौतिक द्रव्यों का अनेक इन्द्रियों द्वारा भी ग्रहण होता है।

४. मूर्त एवं अमूर्त भेद से

नौ कारण द्रव्यों में पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा मन में क्रिया रहने के कारण इन्हें मूर्त द्रव्य माना जाता है। इनके विपरीत आकाश, काल, दिशा एवं आत्मा अमूर्तिमान एवं क्रियाहीन परिलक्षित होने से अमूर्तधर्मा कहे जाते हैं।

५. नित्यानित्य भेद से

जिन द्रव्यों का क्षय नहीं होता उन्हें नित्य कहते हैं। नौ कारण द्रव्यों में आकाश, काल, दिशा, आत्मा एवं मन नित्य कहे जाते हैं तथा पृथ्वी, जल, तेज एवं वायु कार्य रूप में अनित्य एवं तन्मात्रा रूप में नित्य हैं, दार्शनिक दृष्टि से भूतानुप्रवेश की परम्परा में नित्य हैं। **'महीं संलीयते तोये, तोयं संलीयते रवौ, रवौ संलीयते वायुर्वायुः नभति लीयते'** चारों महाभूत आकाश में विलीन होने से भी नित्य नहीं कहे जाते हैं।

६. व्यापकाव्यापक भेद से

नौ कारण द्रव्यों में पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं मन अव्यापक हैं तथा इनकी अपेक्षा, आकाश, काल, दिशा एवं आत्मा व्यापक होने से विभु कहे जाते हैं।

JAYPEE BROTHERS

आयुर्वेद की दृष्टि से सांसारिक द्रव्यों को भी विभाजित करते हुए दो मुख्य भेद किये हैं जिन्हें चेतन एवं अचेतन कहते हैं।

७. चेतनाचेतन भेद से

सेन्द्रियं चेतनं द्रव्यं निरिन्द्रियमचेतनम् (चरक सूत्र)

इन्द्रिय सहित को चेतन एवं इन्द्रियरहित को अचेतन कहा जाता है।

1. चेतन द्रव्य, 2. अचेतन द्रव्य।

१. चेतन द्रव्य

जो द्रव्य इन्द्रियों से युक्त होते हैं उन्हें चेतन कहा जाता है, जैसे मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष आदि। इनमें चेतन द्रव्यों के साथ इन्द्रिय एवं आत्मा का सम्बन्ध रहता है। इसी कारण उनमें जीवन या चेतना के सामान्य निम्नलिखित लक्षण परिलक्षित होते हैं।

क) ग्रहण किये आहार को शरीर के सात्म्य बनाना।
ख) शरीर के मल का विसर्जन करना।
ग) श्वासोच्छ्वास की क्रिया करना।
घ) प्रजनन गुण से सन्तोत्पत्ति करना।
ड़) शरीरावयवों की वृद्धि करना।
च) सुख दु:खादि के भाव स्पष्ट करना एवं उनके प्रति विशेष क्रिया का प्रदर्शन करना आदि।

चेतन के पुन: दो भेद हैं-

1. बहिरन्तश्चेतन, 2. अन्तश्चेतन।

२. बहिरन्तश्चेतन

इस वर्ग में जिन प्राणियों की गणना की जाती है वे पूर्णरूपेण चेतन धर्म को धारण करने वाले होने से बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों प्रकार की ज्ञान अवस्थाओं वाले होते हैं। वे अपने भाव उचित अवसर पर व्यक्त करते हैं या कर सकते हैं, नहीं भी करते अर्थात् यदि नहीं चाहें तो अपने अन्दर ही उनका धारण किये हुए अनुभव करते हैं। इनके भी सुश्रुत में चार भेद किये गए हैं।

1. जरायुज, 2. अण्डज, 3. स्वेदज, 4. उद्भिज्ज।

१. **जरायुज**- जो जरायु (अपरा या Placenta) से उत्पन्न होते हैं उन्हें जरायुज कहा जाता है जैसे मनुष्य, पशु आदि।
२. **अण्डज**- जिनका जन्म अण्डे से होता है उन्हें अण्डज कहा जाता है जैसे पक्षी, सांप, पिपिलिका आदि।
३. **स्वेदज**- जो पसीने से उत्पन्न होते हैं मल भाग या पृथ्वी की वाष्प से जिनकी उत्पत्ति होती है, वे स्वेदज हैं जैसे यूका, लिक्षा, कृमि, कीट आदि।
४. **उद्भिज्ज**- जो अवसर पाकर पृथ्वी को फाड़कर बाहर निकलते हैं उन्हें उद्भिज्ज कहा जाता है। जैसे वीरबहूटी, मेंढक आदि।

विशेष

बहिरन्तश्चेतन वर्ग में चलने फिरने वाले सभी प्राणियों को रखा गया है। इन्हें इसी कारण जंगम भी कहा जाता है जिसकी व्युत्पत्ति में लिखा है कि **''गच्छतीति जंगमम्''** इनमें प्रथम भेद जरायुज का है जो अपरा (Placenta) में उत्पन्न होते हैं अर्थात् गर्भाशयिक रूप एक विशेष आवरण में इनकी उत्पत्ति होती है। अत: इस वर्ग को Placentalea or Oviparous भी कहते हैं। दूसरा भेद अण्डज है जो प्राणी अण्डे से उत्पन्न होते हैं उन्हें Oviparous कहते हैं। तीसरा स्वेदज वर्ग हैं एवं चतुर्थ में उद्भिज्ज वर्ग है। सुश्रुत में जंगमों के चार भेद करते

JAYPEE BROTHERS

हुए उद्भिज्ज के मेंढ़क, बीरबहूटी आदि का वर्णन किया गया है जबकि ये भी अण्डज ही होते हैं। मनुस्मृति में लिखा है कि जितने भी अण्डे से उत्पन्न होने वाले प्रकार हैं वे चाहे स्थलज हों या जलज अण्डज वर्ग में ही समाविष्ट होते हैं-

अण्डजाः पक्षिणाः सर्पा नक्रा मत्स्याश्च कच्छपाः।
यानि चैव प्रकारणि स्थलजान्यौद्कानि च॥ (मनु०अ० 1)

सुश्रुत द्वारा उन उद्भिज्जों को चतुर्थ वर्ग में रखा है जिस पर भी विचार करना आवश्यक है। अतः इस शंका का समाधान आगे दिया गया है-

शंका समाधान

यद्यपि बीरबहूटी, मेंढक आदि का जन्म भी अण्डे से ही होता है तब इन को भी अण्डज वर्ग में ही मानना चाहिए था, एक पृथक् वर्ग बनाने की क्या आवश्यकता थी? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि ये अण्डज होते हुए भी अन्य अण्डज प्राणियों की अपेक्षा इनमें कुछ विशेषताएं होती हैं जैसे-

1. कुछ काल तक पृथ्वी में रह सकते हैं एवं अवसर पाकर बाहर निकल आते हैं।
2. दूसरा इसमें त्वचा द्वारा भी श्वसन क्रिया सम्पन्न होती है जिसे इन प्राणियों की शीत समाधि कहा जाता है।

उपरोक्त विशेषताओं को प्रकट कराने हेतु ही इनका उद्भिज्ज नामक पृथक् वर्ग बनाया। चरक एवं अन्य संहिताओं से उद्भिज्ज से वनस्पतियों का ग्रहण किया है जबकि सुश्रुत ने वनस्पतियों को स्थावर कहा है एवं उद्भिज्ज शब्द इन्हीं दो जीव विशेष की विशेषता व्यक्त करने हेतु ही प्रयुक्त हुआ है।

अन्तश्चेतन

इस वर्ग में वनस्पति का वर्गीकरण किया गया है। इन जीवधारियों में अपनी संवेदना को व्यक्त करने की शक्ति नहीं होती। इनमें पाई जाने वाली चेतना एवं अन्तः संवेदना के अनेक उदाहरण वैदिक साहित्य में प्राप्त होते हैं। मनुस्मृति में लिखा है कि-**''अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः''** आधुनिक वैज्ञानिकों में डॉ० जगदीशचन्द्र बसु ने भी पेड़ पौधों में जीव होना सिद्ध कर दिया है। इन्हें Vegetable kingdom कहते हैं।

मनु स्मृति में- **उद्भिज्जाः स्थावरा सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः।**

भेल संहिता में- **उद्भिज्जास्तु तृणलतावृक्षवनस्पतयः।**

उद्भिद्य पृथिवीं जायन्ते इति औद्भिदं वृक्षादि। (च०द०)

वनस्पति वर्ग के भी चार भेद किये गए हैं।

1. वनस्पति, 2. वानस्पत्य, 3. वीरुध, 4. औषध।

१. **वनस्पति**- जिनमें केवल फल लगते हैं, पुष्प अदृश्य होते हैं उन्हें वनस्पति कहते हैं जैसे-वट, पीपल आदि।
२. **वानस्पत्य**- जिनमें पुष्प एवं फल दोनों दिखाई देते हैं उन्हें वानस्पत्य कहते हैं जैसे आम, नीम, जामुन आदि।
३. **वीरुध**- जो वनस्पतियां लता एवं गुल्म रूप में हो उन्हें वीरुध कहते हैं जैसे प्रसारिणी, गिलोय, कण्टकारी, कनेर आदि।
४. **औषध**- फल पकने पर जो वनस्पति स्वयं नष्ट हो जाये उसे औषध कहा जाता है जैसे जौ, चावल, गेहूं, बाजरा आदि।

विशेष- यद्यपि मनुष्यादि अन्य चेतन प्राणियों की तरह इनमें भी वे सभी क्रियाएं होती हैं जो उनमें होती हैं किन्तु अन्तर इतना ही है कि इन वनस्पतियों में उन भावनाओं को व्यक्त करने की क्षमता नहीं होती। इनमें इन्द्रिय ज्ञान के अतिरिक्त निद्रा, मृत्यु, रस, रक्तसंचार आदि सभी प्रक्रियाएं होती हैं। इनमें रक्त का वर्ण लाल के स्थान पर दूध के समान, जल के समान अथवा पीत रस के समान होता है। प्रायः ये आक्सीजन निकालते हैं। कार्बनडाईआक्साईड ग्रहण करते हैं।

JAYPEE BROTHERS

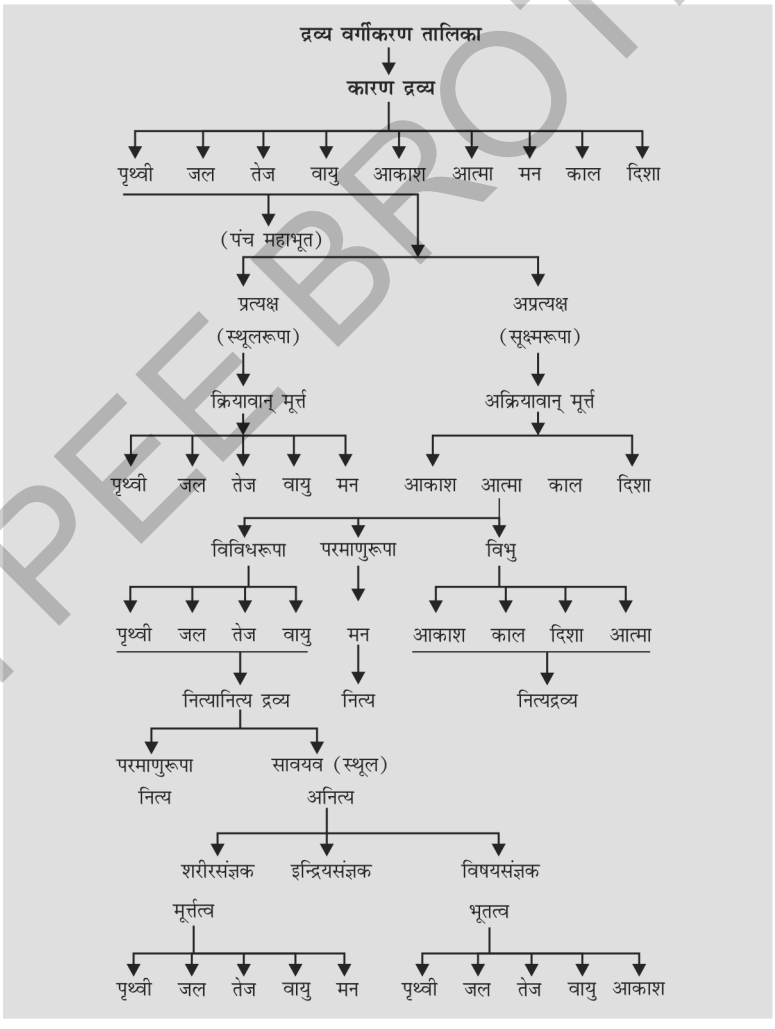
दव्यों का साधर्म्य वैधर्म्य

इस चेतन और अचेतन सृष्टि में नाना प्रकार के द्रव्य हैं। उनमें बहुत कुछ समानताएं तथा बहुत सी विषमताएं भी हैं। कुछ गुण धर्म एवं कर्म ऐसे होते हैं जो बहुत से द्रव्यों में समान रूप से पाये जाते हैं। यही उन द्रव्यों में परस्पर साधर्म्य कहलाता है। कुछ ऐसे गुण धर्म भी होते हैं जो आपस में नहीं मिलते हैं वही एक दूसरे का वैधर्म्य कहलाता हैं जैसे सम्पूर्ण सृष्टि निर्माण में पंचमहाभूतों की विद्यमानता रहती है। अतः पांचभौतिक तत्त्व सभी में साधर्म्य हैं। दूसरी ओर इन पांचभौतिक तत्त्वों का अनुपात प्रत्येक वस्तु में भिन्न-भिन्न होता है इसी कारण पार्थिव, आप्य, आग्नेय, वायवीय और नाभस कहे जाते हैं। यही तात्त्विक वैधर्म्य होता है।

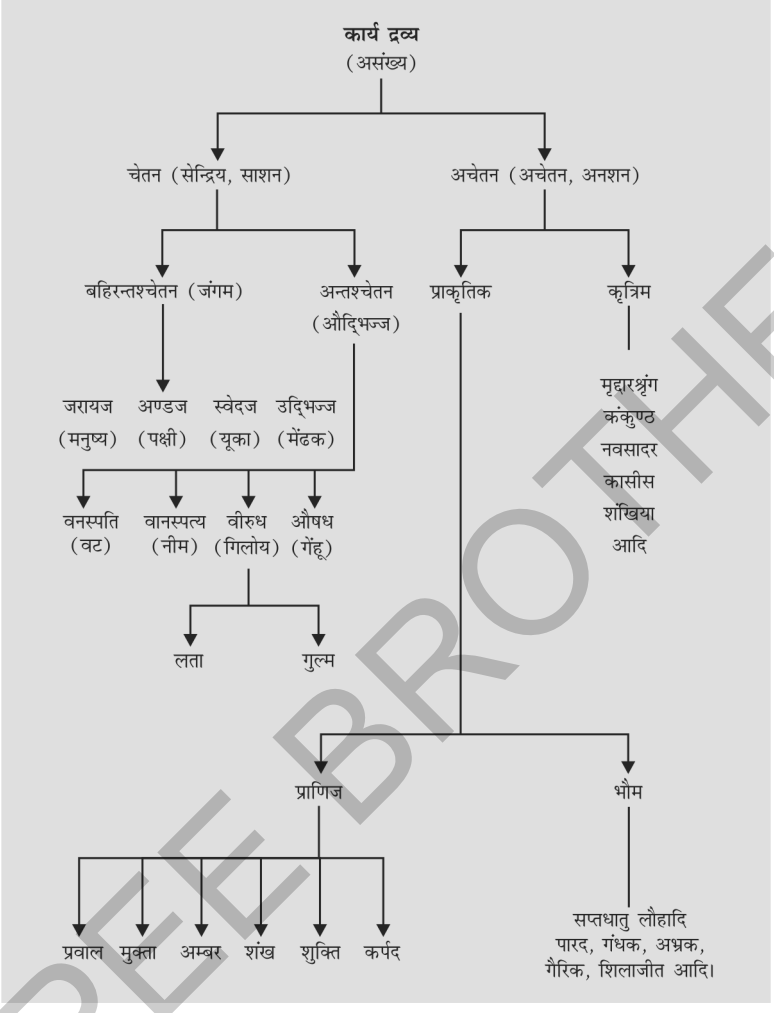
अतः विभिन्न द्रव्यों में पाये जने वाले समान धर्म का नाम साधर्म्य और विपरीत धर्म का नाम वैधर्म्य है इनमें साम्य और वैषम्य भी कहा जाता है।

द्रव्यों का साधर्म्य

समानो धर्मो येषां ते सधर्माणः तेषां भावः साधर्म्यम्।



JAYPEE BROTHERS



उपरोक्त द्रव्य वर्गीकरण सामान्य रूप में छात्र अध्ययन सुविधा हेतु किया गया है। इन भेदों का विस्तार से वर्णन इसी अध्याय में किया गया है।

अन्यत्र नित्यद्रव्येभ्य आश्रितत्वमिहोच्यते।
क्षित्यादीनां नवानां तु द्रव्यत्वं गुणयोगिता ॥
क्षितिर्जलं तथा तेजः पवनो मन एव च।
परापरत्वमूर्तत्वं क्रियावेगाश्रया अमी॥
कालखात्मदिशां सर्वगतत्वं परमं महत्।
क्षित्यादिपञ्चभूतानि चत्वारि स्पर्शवन्ति हि॥

अर्थात् इन नव कारण द्रव्यों में पाये जाने वाले परस्पर समान धर्म इस प्रकार हैं-

1. नित्य द्रव्यों को सभी का साधर्म्य आश्रितत्व है।
2. पृथ्वी आदि नव कारण द्रव्यों में द्रव्यत्व और गुणयोगित्व धर्म साधर्म्य है।

JAYPEE BROTHERS

3. पृथ्वी, जल, तेज, वायु और मन में परत्व, अपरत्व, मूर्तत्व क्रियात्व और वेगत्व समान रूप में होने से भी इन धर्मों के कारण पारस्परिक साधर्म्य है।
4. काल, आकाश, आत्मा और दिशाओं में सर्वगतत्व, परममहत्व, परिमाणत्व, समान धर्म होने से साधर्म्य है।
5. पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश आदि पांचों में भूतत्व साधर्म्य हैं जो सत्तावान् हों एवं जिनमें रहने वाले विशेष गुण बाह्य इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किये जाते हैं उन्हें भूत कहा जाता है।
6. पृथ्वी, जल, तेज और वायु आदि चार में स्पर्श गुण साधर्म्य है।
7. पृथ्वी, जल, तेज, वायु में द्रव्यारम्भकत्व अर्थात् द्रव्यों की उत्पत्ति में समवायी कारण वाला धर्म साधर्म्य है।
8. आकाश और आत्मा में अव्याप्यवृत्ति विशेष गुण और क्षणिक गुण विशेष रूप से दो प्रकार का साधर्म्य है।
9. पृथ्वी, जल और तेज इन तीनों द्रव्यों में रूप, द्रव और प्रत्यक्षयोगित्व साधर्म्य है।
10. पृथ्वी और जल में रस एवं गुरुत्व साधर्म्य है।
11. पृथ्वी तथा तेज में नैमित्तिक द्रव्यत्व भी साधर्म्य है।
12. पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश और आत्मा में विशेष गुण साधर्म्य है।

द्रव्यों का वैधर्म्य

द्रव्यों के परस्पर विपरीत धर्म को वैधर्म्य कहते हैं।

''विरुद्धो धर्मो येषां ते विधर्माणः तेषां भावो वैधर्म्यम्''

1. प्रत्येक महाभूत अपने विशेष गुण के कारण परस्पर वैधर्म्य रखते हैं।
2. पृथ्वी एवं तेज में नैमित्तिक द्रवत्व के कारण जो साधर्म्य है वही जल में पाये जाने वाले नित्य द्रवत्व से वैधर्म्य है।
3. पृथ्वी, जल एवं तेज का रूप तथा गुण, मन, आत्मा, काल, दिशा एवं आकाश में नहीं होने के कारण इनका पृथ्वी, जल एवं तेज से वैधर्म्य है।

अतः साधर्म्य वाले द्रव्यों का दूसरे द्रव्यों के साथ अनेक धर्मों में साधर्म्य होते हुए भी कुछ गुणधर्मों के कारण वैधर्म्य भी होता है। पांचों महाभूतों में भूतत्व समान होते हुए भी कुछ विरुद्ध धर्मों के साथ आपस में वैधर्म्य है।

द्रव्यों में गुण

द्रव्य में पाये जाने वाले अनेक गुण हैं जिनको मुख्यतया दो भागों में विभक्त किया जाता है। 1. **विशेष गुण** और 2. **सामान्य गुण**। भौतिक दृष्टि से भी द्रव्य में सामान्य गुणों का उल्लेख किया है।

द्रव्यों के मुख्य दो भेद किये हैं। 1. **कारण द्रव्य,** 2. **कार्य द्रव्य**। इनमें कारण द्रव्यों की संख्या नौ बताई गई है, जैसा कि पीछे द्रव्य विवरण में पढ़ चुके हैं। इन कारण द्रव्यों में जिन गुणों की विद्यमानता बनी रहती है उसका प्रत्येक द्रव्य के साथ वर्णन कर दिया जायेगा। ज्ञान की दृष्टि से यहां सभी द्रव्यों में पाये जाने वाले समान गुणों का वर्णन किया जायेगा तो सामान्य एवं विशेष गुणों के नाम से वर्णित हैं। प्रत्येक द्रव्य के गुण इस प्रकार हैं–

वायोर्नवैकादशतेजसो गुणा जलक्षितिप्राणभृतां चतुर्दश।
दिक्कालयोः पञ्च षडेव चाम्बरे महेश्वरेष्टौ मनसस्तथैव च॥

पृथ्वी में– रूप–रस–गन्ध स्पर्श–संख्या–परिमाण–पृथकत्व–संयोग– विभाग–परत्व– अपरत्व–गुरुत्व–द्रवत्व एवं वेग आदि 14 गुण रहते हैं।

जल में– पृथ्वी के समान वे ही 14 गुण हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि गन्ध के स्थान पर स्नेह गुण है।

तेज में– रूप–स्पर्श–संख्या–परिमाण–पृथकत्व–संयोग–विभाग–परत्व–अपरत्व– वेग ये 11 गुण रहते हैं।

वायु में– रूप–स्पर्श–संख्या–परिमाण–पृथकत्व–संयोग–विभाग–परत्व–अपरत्व– वेग ये 9 गुण रहते हैं।

आकाश में– संख्या–परिमाण–पृथकत्व–संयोग–विभाग और शब्द ये 6 गुण रहते हैं।

JAYPEE BROTHERS

काल एवं दिशा में- संख्या-परिमाण-पृथकत्व-संयोग एवं विभाग ये 5 गुण रहते हैं।

आत्मा में- बुद्धि-सुख-दु:ख-इच्छा-द्वेष-प्रयत्न-धर्म-अधर्म-संख्या-परिमाण- पृथकत्व-संयोग-विभाग तथा भावना आदि 14 गुण रहते हैं।

मन में- संख्या परिमाण-पृथकत्व-संयोग-विभाग-परत्व-अपरत्व एवं वेग ये 8 गुण रहते हैं।

द्रव्यों में पाये जाने वाले गुणों को भी दो भागों में विभक्त किया गया है सामान्य और विशेष गुण।

विशेष गुण

विशेष गुण का लक्षण बताते हुए दीपिका में लिखा है कि-

'द्रव्यविभाजकोपाधिद्वयसमानाधिकरणावृत्तिद्रव्यकर्तावृत्ति-जातिमान्'।

अर्थात् वह गुण जो एक समय में एक द्रव्य में रहे विशेष गुण कहलाता है।

विशेष गुण- भाषा परिछेद में विशेष गुणों का नामोल्लेख करते हुए लिखा है-

बुद्ध्यादिषट्कं स्पर्शान्ताः स्नेहसांसिद्धिको द्रवः।

अदृष्टभावनाशब्दा अमी वैशेषिका गुणाः॥

अर्थात् दर्शन शास्त्र में मान्यरूप गुणों में से बुद्धि आदि छः (बुद्धि, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दु:ख) स्पर्श, स्नेह, सांसिद्विक द्रवत्व, अदृष्ट, भावना और शब्द ये विशेष गुण बताये गए हैं।

सामान्य गुण

संख्यादिरपरत्वान्तो द्रवोऽसांसिद्धिकस्तथा।

गुरुत्ववेगौ सामान्यगुणा ऐते प्रकीर्तिताः॥ (भाषा परिच्छेद)

अर्थात् संस्कार से लेकर अपरत्व तक और सांसिद्धिक द्रवत्व गुरुत्व तथा वेग ये सामान्य गुण बताये गए हैं।

इन्द्रियग्राह्यत्व प्रकार- उपरोक्त गुणों को इन्द्रियग्रह्य रूप की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त किया गया है।

१. **एकेन्द्रियग्राह्य**- रूप, रस, गन्ध, स्पर्श व शब्द एकेन्द्रियग्राह्य गुण हैं। मुक्तावली में 'स्पर्शान्ता' से पांचों ज्ञानेन्द्रियग्राह्य गुण हैं।

२. **द्विइन्द्रियग्राह्य**- संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व तथा स्नेह ये चक्षु तथा त्वचा द्विइन्द्रियग्राह्य गुण हैं।

३. **अतीन्द्रियग्राह्य**- गुरुत्व अदृष्ट (धर्म, अधर्म) और संस्कार अतीन्द्रय गुण कहे जाते हैं। अर्थात् इनका किसी भी इन्द्रिय से प्रत्यक्ष नहीं होता। एवं जो विभुओं के विशेष गुण हैं वे अकारण गुणपूर्वक गुण हैं। अर्थात् कारण के गुणों से कार्य में जो गुण उत्पन्न होते हैं वे कारणगुणपूर्वक कहे जाते हैं।

भौतिक शास्त्रानुसार द्रव्यस्वरूप व गुण

ताप, प्रकाश आदि कुछ वस्तुओं को छोड़कर संसार की विभिन्न निर्जीव वस्तुयें पदार्थ कहलाती हैं तथा जिस विज्ञान में ताप, प्रकाश विद्युत् तथा शब्द का अध्ययन किया जाता है पदार्थों के स्वाभाविक ज्ञान का वर्णन किया जाता है उसे भौतिक विज्ञान कहते हैं।

द्रव्य की अवस्थायें

समस्त द्रव्यों को प्रायः तीन अवस्थाओं में विभाजित किया गया है। 1. घन द्रव्य, 2. द्रव द्रव्य, 3. गैस द्रव्य। घन को ठोस एवं द्रव तथा गैस को तरल भी कहते हैं

JAYPEE BROTHERS